ISSN 2277-5587
Indexed in ULRICH & IIJIF
Impact Factor 3.193
Registered & Listed by UGC 43289

Shodh Shree

(International Referred Journal of Multidisciplinary Research)

शोध श्री

25TH VOLUME

Issue - 4 October-December 2017 RNI No. RAJHIN/2011/40531

CHIEF EDITOR
Virendra Sharma

EDITOR
Dr. Ravindra Tailor

shodhshree@gmail.com
www.shodhshree.com

Shodh Shree Issue - 4 Volume-25 October-December 2017

Shodh Shree

(International Referred Journal of Multidisciplinary Research)

Contents

Volume-25 **Issue-4** **October - December 2017**

1. **कुंभाकालीन शिलालेखों में संरक्षित वंशावलियों का इतिहास लेखन में महत्व** **1-5**
   प्रो. एस.पी. व्यास, नई दिल्ली
2. **चर्मकार उपान्तिक वर्ग में आन्तरिक सामाजिक–आर्थिक स्तरीकरण का अध्ययन (मारवाड़ के विशष संदर्भ में)** **6-9**
   डॉ. अनिल पुरोहित, जोधपुर
3. **अवध में मुशायरे का विकास (1722–1856)** **10-15**
   डॉ. चित्रगुप्त, झांसी (उत्तरप्रदेश)
4. **दौसा जिले में जनसंख्या की आर्थिक क्रियाओं का भौगोलिक अध्ययन** **16-23**
   जे.एन. गुर्जर, अजमेर एवं अभिषेक वशिष्ठ, दौसा
5. **प्रगतिवादी विचाराधारा एवं नागार्जुन के उपन्यास** **24-28**
   प्रियंका यादव, जयपुर
6. **बून्दी जिले में सामाजिक–आर्थिक विकास के स्तर** **29-33**
   भूपेश जेतवाल, बून्दी
7. **नवमानववाद – व्यक्ति की स्वतंत्रता का दर्शन** **34-36**
   ज्योति देवल, अजमेर
8. **विदेशी यात्रियों द्वारा वर्णित मुगलकालीन सामाजिक स्थिति : एक विवेचन** **37-40**
   ईश्वर सिंह, अदमपुर (हरियाणा)
9. **समकालीन कविता में आदिवासी जीवन** **41-44**
   हरिकेश मीना, करौली
10. **राजस्थान वस्त्र परम्परा पर मुगल प्रभाव** **45-50**
    इन्दिरा, जयपुर
11. **भारत–आसियान सम्बन्ध : भारतीय विदेश नीति में बदलाव का प्रतीक** **51-58**
    डॉ. प्रेमलता परसोया, कोटा
12. **आधुनिक समाज में टूटते परिवार का संत्रास** **59-62**
    संदीपा विश्वकर्मा, कानपुर (उत्तरप्रदेश)
13. **शिक्षा के उद्देश्य : जैन दर्शन के परिप्रेक्ष्य में** **63-66**
    सुषमा शर्मा, श्री गंगानगर
14. **नेहरू का लोकतंत्र : संकट के दौर में** **67-71**
    कैलाशचन्द सामोता, जयपुर
15. **जैन धर्म/दर्शन में अष्टांग योग** **72-76**
    डॉ. पुनीत कुमार मिश्र, मथुरा (उत्तर प्रदेश)
16. **राजस्थान में मनरेगा के अन्तर्गत सामाजिक अंकेक्षण की भूमिका** **77-81**
    कृष्णकांत मीना, जयपुर

चर्मकार उपान्तिक वर्ग में आन्तरिक सामाजिक-आर्थिक स्तरीकरण का अध्ययन (मारवाड़ के विशष संदर्भ में)

डॉ. अनिल पुरोहित
सहायक आचार्य, महिला पी.जी. महाविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश
प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था के स्तरीकरण में सबसे निचला स्तर शूद्रों को प्राप्त था। कौशल निपुण होने पर भी मुख्य सामाजिक व्यवस्था में उन्हें निम्न स्थान ही प्राप्त था । उनके संस्कृतिकरण स्पष्ट बदलाव हमें गुप्त एवं गुप्तोत्तर काल में मिलते है। मध्ययुगीन भारत में अनेक शिल्पकारों को सामन्ती पद प्रदान किये गये थे। जिससे उनकी सामाजिक स्थिती में अवश्य सुधार आया। राजस्थान के सामाजिक-आर्थिक इतिहास में समान रीति-रिवाज, परम्पराओं एवं व्यवस्थाओं के होने पर भी उनमें सामाजिक स्तरीकरण की भावना व्याप्त है। प्रस्तुत शोध - पत्र में रिपोर्ट मर्दुमशुमारी राज-मारवाड़ में वर्णित चर्मकार उपांतिक जाति के आंतरिक सामाजिक -आर्थिक स्तरीकरण का विशलेषण करने का प्रयास किया गया है।
संकेताक्षर : *सर्वहारा, शूद्र, दस्तकार, महत्तर, स्तरीकरण, व्यवसाय, नाता ।*

कार्लमार्क्स का यह कथन है कि, जिस समय सर्वहारा- वर्ग की सत्ता स्थापित होगी, उस समय वर्ग संघर्ष सदैव के लिये समाप्त हो जायेगा। किन्तु वास्तविक स्थितियों का यदि अध्ययन करें, तो मार्क्स की यह सोच मात्र यूटोपिया ही सिद्ध हो सकती है, क्योंकि साम्यवादी सरकारों (सर्वहारा का शासन) की स्थापना के साथ शोषण समाप्त नहीं हुआ।

प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था का मूल आधार वर्ण - व्यवस्था थी, जिसमें चार वर्णो को स्वीकारा गया है, यथा - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र। इनमें स्तरीकरण में सबसे निचला स्तर शूद्रों को प्राप्त था, किन्तु यदि हम इस प्राचीन भारतीय व्यवस्था के इस वर्ण का अध्ययन करते है तो हमें ज्ञात होता है कि, इस वर्ण का विभाजन (आंतरिक रूप से) हो चुका था, जिसे हम तकनीकि शूद्र एवं गैर -तकनीकि शूद्र मान सकते है। यह विभाजन हमें इसलिये स्वीकारना चाहिये, क्योंकि क्षत्रिय वर्ण यद्यपि उच्च है, किन्तु उसके लिये युद्ध सम्बन्धी सामग्रियों, राजप्रासाद को सजाने - संवारने की सामग्रियों, सामान्य और राजउद्यानों की व्यवस्थाओं आदि कार्यो के लिये उन्हें जिन लोगों की आवश्यकता होती थी, वे सभी शूद्र वर्ण से जुड़े थे। इसके अलावा वैश्य वर्ण के लोग का मुख्य कार्य व्यापार करना था, किन्तु उनके लिये उत्पादों एवं उत्पादकों की प्राप्ति का स्त्रोत यही शूद्र वर्ण था, जो अपने कौशल से उपरोक्त सभी कार्य किया करता था। कौशल निपुण होने पर भी मुख्य सामाजिक व्यवस्था में उन्हें निम्न स्थान ही प्राप्त था, किन्तु अपने वर्ण में ये कौशल युक्त समुह अन्य सामान्य समूहों से उच्च था। शूद्रों में यह कौशल कैसे उत्पन्न हुए ? यह स्पष्ट रुप से नहीं कहा जा सकता हैं, किन्तु इसका एक कारण हम यह स्वीकार कर सकते हैं कि, प्रारम्भ में भारत के अनेक क्षेत्रों में रहने वाली जंगली-जातियों को यद्यपि विजित क्षत्रियों ने किया, किन्तु उनका संस्कृतिकरण बाह्मणों ने किया तथा उन्होंने जीवन-यापन के तरीके वैश्यों से सीखें हैं। इसके अतिरिक्त प्रकृति के समीप रहने के कारण प्राकृतिक संसाधनों का अलग-अलग तरीके से प्रयोग करना शूद्रों ने अधिक कुशलता से सीखा होगा। यद्यपि प्राचीन भारत में समाज की मुख्य व्यवस्था में शूद्रों की स्थिती में बदलाव आने लगे थे, किन्तु स्पष्ट बदलाव हमें गुप्त एवं गुप्तोत्तर भारत में मिलते है। स्कन्द पुराण में शूद्रों को अन्नदाता और गृहस्थ कहा गया हैं।[9] इस काल में दस्तकारों का अत्यधिक महत्त्व हुआ करता था। कोई भी क्षेत्र का स्वामी यह नहीं चाहता था कि, उसके क्षेत्र के दस्तकार उसका क्षेत्र छोड़ अन्य क्षेत्रों में चले जायें, क्योंकि से दस्तकार स्थानीय अर्थव्यवस्था का मुख्याधार थे। 7वीं शताब्दी के समुद्र गुप्त के दो अधिकार - पत्र प्राप्त होते है, जिनमें कर अदा करने वाले दस्तकारों एवं कृषकों से कहा गया है कि, वे गांव छोडकर ना जायें और ना ही करमुक्त क्षेत्रों में रहें।[10] कुछ चन्देल वंशी अनुदान पत्रों में भी दस्तकारों की ऐसी अनेक जातियों का वर्णन है,

 ISSN 2277-5587

जिन्हें दान किये जाने वाले ग्रामों के साथ पूर्णतः हस्तान्तरित कर दिया जाता था।[11] दक्षिण भारतीय इतिहास के स्त्रोतों में अनेक उदाहरण मिलते है, जिनमें अनेक दस्तकारों को मंदिरों एवं मठों को हस्तान्तरित किया गया था।[12] इसी प्रकार मध्ययुगीन भारत यद्यपि युद्धों का काल था, किन्तु दस्तकारों अथवा समाज के निम्नतम वर्ग की आवश्यकता इस काल भी समाज को अत्यधिक रही, क्योंकि जो सैनिक – अभियान हुआ करते थे, उनमें सेवा के विभिन्न कार्यों एवं आवश्यकताओं के लिये इन श्रम करने वाले लोगों की आवश्यकता थी। इस काल में अनेक शिल्पकारों को सामन्ती पद प्रदान किये गये थे। विजयसेना के देवपारा शिलालेखों से ज्ञात होता है कि, वारेन्द्र के शिल्पकारों की बस्ती के मुखिया शूलपाणी को रणक[13] की उपाधि दी गयी थी। इस काल में ठाकुर, राउत, नायक जैसी उपाधियां कायस्थ एवं उनके सम – जातियों को दी जाती थी, जिससे उनकी सामाजिक स्थिती में अवश्य सुधार आया होगा। आज भी ब्राह्मणों, राजपूतों, कायस्थों, नापतों, हज्जामों आदि उच्च एवं निम्न जातियों में ठाकुर मिलते है।

इस काल में ग्राम एवं भूमि सम्बन्धी रिकार्ड रखने का कार्य अहलक किया करते थे। इनमें कई श्रेणियां थी, जिनमें से कायस्थ प्रमुख थे। धीरे – धीरे यह पद महत्त्वपूर्ण हो गया तो, उच्चतर वर्ण के पढे– लिखे सदस्य भी इस पद की तरफ आकर्षित हुए। कल्हण ने लिखा है कि, बाह्मण शिवरथ को कायस्थ अधिकारी नियुक्त किया गया।[14] धीरे – धीरे उच्च वर्णो की विभिन्न श्रेणियों के लोग इस प्रकार के कार्यो से जुडने लगे तथा उन्होंने अपनी मूल श्रेणी से सम्बन्ध पूर्ण समाप्त कर लिये। कायस्थों की भांति ही इस काल में उत्तरी – भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में ग्राम – प्रमुखों का एक वर्ग था, जिन्हे महत्तर कहा जाता था। भूमि – अनुदानों एवं भूमि की खरीद – फरोख्त के बारे में अपने क्षेत्र के महत्तर को सूचित करना अनिवार्य होता था। इसके अलावा ग्राम – विशेष के महत्तर की वहाँ की भूमि में काफी हद तक हिस्सेदारी हुआ करती थी। इससे प्रतीत होता है कि, प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था में शूद्र वर्ण का महत्तर पूर्व – मध्यकाल एवं मध्यकाल के समय में काफी अधिक सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका था। इसके अतिरिक्त अनेक उच्च वर्ग के लोग महत्तरों में परिवर्तित हो गये थें, इसी कारण हमें वर्तमान में मेहत्तर, महतो, महाथा, मल्होत्रा, मेहरीता आदि जातियां उच्च एवं निम्न दोनों प्रकार की जातियों में मिलती है।

गुप्तोत्तर काल में भारत आए ह्वेनसांग शूद्रों को खेतीहर स्वीकारता है।[15] किन्तु अलबरूनी, जो कि उसके कुछ शताब्दियों बाद ही भारत आया था, वह वैश्यों एवं शूद्रों की सामाजिक स्थिति में कोई विशेष अंतर नही बताता है।[16] जैसा कि स्कन्दपुराण में कहा गया था कि, वैश्य वर्ग का पतन हो जाएगा एवं वे तेल निकालने वाले एवं धान कूटने वाले बन जाएंगे। 11वीं शताब्दी तक ये परिवर्तन देखने को मिल जाते है।[17]

भारतीय इतिहास की भाँति क्षेत्रीय इतिहास में भी इस प्रकार का आंतरिक स्तरीकरण देखने को मिल जाता हैं। राजस्थान के सामाजिक–आर्थिक इतिहास पर विशेषतः मारवाड़ परगने के सामाजिक–आर्थिक स्तरीकरण पर सर्वप्रथम प्रामाणिक कार्य मारवाड़ नरेश जंसवतसिंह प्रथम के दीवान नैणसी ने अपने ग्रंथ 'मारवाड़ रा परगनां री विगत' के रूप में किया है। नैणसी के इस अध्ययन से हमें 17वीं शताब्दी में राजपूताना के एक बड़े हिस्से में व्याप्त जातियों के उदय एवं विकास की जानकारी हो जाती है। कालान्तर में कर्नल जेम्स टॉड के एनाल्स एण्ड एन्टिक्टीज ऑफ राजस्थान; एम.ए. रोरिंग के ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स ऑफ राजपूताना; सी.टी. मैटकॉफ के दी राजपूत ट्राइब्स; मुंशी रायबहादुर मुंशीहरदयाल की रिपोर्ट मर्दुमशुमारी राजमारवाड़,1891 (*Marwar Census Report-1891*) जैसे ऐतिहासिक ग्रंथों का आधार नैणसी की परगना री विगत ही रही होगी। मर्दुमशुमारी 1894 में प्रथम बार प्रकाशित हुई तथा इसमें 1891 में हुई तत्कालीन मारवाड़ की जन–गणना की रिपोर्ट है। इसमें तत्कालीन मारवाड़ की कौमों का इतिहास, रीति–रिवाज, परम्पराओं आदि का उल्लेख किया गया है। यह ग्रन्थ इसलिये भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें जिन कौमों–जातियों का उल्लेख किया गया है, उनका विभिन्न कालों में सामाजिक–स्तर परिवर्तन, व्यवसाय आदि का भी विवरण दिया गया है। मर्दुमशुमारी में जातियों का विभाजन छः श्रेणियां में (A,B,C,D,E,F) किया गया है। इनमें उपान्तिक वर्ग से सम्बन्धित श्रेणियां D एवं E है, इनमें भी E श्रेणी तुलनात्मक रूप से अधिक महत्वपूर्ण है। इन दोनो ही श्रेणियों में शिल्पी, कारीगर, मजदूर इत्यादि आदि उपान्तिक जातियों का सम्पूर्ण विवरण मिलता है।[18]

यहाँ उल्लेखनीय तथ्य यह है कि, D एवं E श्रेणियों में आन्तरिक रूप से वर्ग – स्तरीकरण देखने को मिलता है। तथ्य यह है कि, इन श्रेणियों में जो विभिन्न जातियां मिलती है, उन जातियो में अनेक जो उप– जातियां है, उनमें समान रीति–रिवाज, परम्पराओं एवं व्यवस्थाओं के होने पर भी उनमें सामाजिक स्तरीकरण की भावना व्याप्त है। प्रस्तुत शोध – पत्र में रिपोर्ट मर्दुमशुमारी राज–मारवाड़ में वर्णित चर्मकार उपांतिक जाति के आंतरिक सामाजिक –आर्थिक स्तरीकरण का विशलेषण करने का प्रयास किया गया है। मर्दुमशुमारी में डी क्लास की चर्म–कार्य से संबंधित जातियां मुख्य रूप से चमार, मोची, रैगर, खटीक

एवं बलाई थी तथा ई क्लास में सरगरा जाति चर्म–कार्य से जुड़ी थी। यद्यपि 'ई' क्लास से भांबी, सांसी, थोरी आदि निम्नतर जातियां भी चर्म–कार्य से जुड़ी थी।

मारवाड़ के चमारों की उत्पत्ति स्थानीय लोग ब्राह्मणों से मानते हैं। इनका कहना है कि, दिल्ली के किसी ब्राह्मण के 7 पुत्र थे, एक बार इनकी रसोई में एक गाय आकर मर गयी, तब सबसे छोटे ब्राह्मण ने उसे घसीट कर घर से बाहर फेंक दिया। तब अन्य छः ब्राह्मणों ने उसे पुनः परिवार में स्वीकार नहीं किया। तब उसने मरे हुए मवेशियों को उठाने, खाल उतारने एवं रंग कर व्यवसाय करने का कार्य शुरू किया। उसी की संतानें चम्मार कहलाई। यह चम्मार दिल्ली से अजमेर एवं अजमेर से मारवाड़ आये।[19] मारवाड़ में आने के पश्चात् इस मूल चम्मार जाति के लोग मारवाड़ के विभिन्न हिस्सों में बस गये। आगे चलकर कार्यो के विभाजन के आधार पर इनसे चमार, मोची, खटीक, रैगर, बलाई, सरगरा, डबगर इत्यादि जातियां अस्तित्व में आयी।

इसमें से चमार मरे हुए विभिन्न पशुओं को उठाने एवं उनकी खाल को भी उतारने का कार्य मुख्य रूप से किया करते थे। चमार लोकदेवता रामदेव जी को मानते हैं, किंतु इष्ट इनका गंगाजी है। शराब का सेवन करते हैं। खान–पान रैगरों एवं भांबियों जैसा है किंतु उनमें यह संबंध नहीं करते हैं[20] क्योंकि ये रैगरों एवं भांबियो को अपने से निम्न मानते हैं। इसी प्रकार पूर्वी मारवाड़ में कुछ चमारों के समूह गाछों एवं मूंज का कार्य करते हैं[21] (जैसा कि सरगरा जाति के लोग करते हैं)। कार्य की समानता होते हुए भी वहां के चमार सरगरों में उनकी सामाजिक निम्नता के कारण संबंध नहीं करते हैं।

मारवाड की दूसरी चर्मकार जाति रैगर है। इनका मूल कार्य चमड़े को रंगने का है। यह लोग चमडे को देशी बबूल, आवंला की छाल, नमक, तेजाब आदि का प्रयोग करके रंगा करते है।[22] इस से चमड़ा रंगने के काबिल हो जाता है, इसे 'रांग' कहते है। रांग से चमड़े को रंगने वाले रांगर एवं कालान्तर में रैगर कहलाये।[23] यद्यपि रैगर यहां चमारों में से ही कार्यविभाजन के आधार पर निकलते है, किन्तु भीलवाडा जिले के हुरड़ा ग्राम से प्राप्त 1062 वि.स. के हुरड़ा लेख में इस जाति का नामोल्लेख आता है। जोधपुर में रैगरों को जटिया भी कहा गया है। यहां मुर्दा मवेशीयों की खाल को रंगने के कारण इन्हे जटिया कहा गया है, किन्तु ये लोग हिरण की खाल कभी नहीं रंगते है। बीकानेर में इन्हें जटियों को रंगिया एवं मेवाड़ में बूला कहा जाता है।[24] जटिया नाम के कारण यहां इनकी पत्नियॉ जाट स्त्रियों की भॉति पैरो में पीतल के कड़े पहनती है। ये लोग मृतको को जलाते भी है एवं गाड़ते भी है। सामाजिक नाते धोबी, डबगर, सरगरे, बावडी, महतर इत्यादि में निम्न मानकर नही करते है।[25]

मारवाड़ क्षेत्र की एक अन्य चर्मकार जाति डबगर है। मारवाड़ में ये दो है। हिन्दू डबगर एवं मुस्लिम डबगर। दोनों ही मूल रूप से राजपूत परिवारों की शाखाओं से थे। कार्यो के आधार पर इनमें दो डबगर है – सामान्य डबगर तो चमड़े को गालकर तेल, घी को रखने के कूपें एवं तराजू के पलड़े नक्कारो एवं मृंदग भी बनाते है, जबकि दूसरे ढालगर ढालो का निमार्ण एवं उन्हे रंगने का कार्य भी लेते है।[26] हिन्दु डबगरों के रीति रिवाज राजपूतों की भांति होते है। चूंकि इनका सम्बंध राजपूतों से रहा है, अतः यह अन्य सभी (चमार, रैगर,मोची,खटीक) चमार जातियों के हाथों से बनी रोटी तक नहीं खाते है। हिन्दू डबगर नाते भी राजपूत जातियो में ही करते है।[27] मुस्लिम डबगर मारवाडी मुस्लिमों की भॉति रीति रिवाज करते है।[28]

मारवाड़ क्षेत्र में चमड़े का कार्य शिल्प सहित कार्य करने वाली जाति मोची भी निवास करती है। मारवाड़ में हिन्दू–मुस्लिम दोनों ही प्रकार के मोची है। हिन्दू मोची सामान्यतय यहॉ के प्रत्येक परगने में हैं एवं मुख्य रूप से जूतियां बनाने का कार्य करते हैं, किंतु हिन्दू मोचियों में मयानगर (छुरियों एवं तलवारों के म्यान बनाने वाले) हैं, जो पहले चौहान, पंवार एवं सोलंकी राजपूत थे। पन्नीगर मोची चांदी की पन्नी का कार्य करते हैं, जो पहले चौहान राजपूत थे। जीनगर मोची घोड़ों की जीन बनाने का कार्य करते हैं, जो पहले चौहान, पंवार, सोलंकी एवं राठौड़ राजपूत थे। जोड़ीगर मोची जूतियां बनाने का कार्य करते हैं एवं ये पंवार, खींची से संबंधित है। थेइगर मोची जामदारी एवं धन रखने की थेई बनाते हैं।[29] मोची आपस में ही नाते करते हैं तथा अन्य चर्मकार जातियों में नहीं करते हैं। ये लोग मुस्लिम मोचियों, गांछों भांबियों आदि के यहां ना तो रोटी खाते हैं ना ही पानी पीते हैं।[30] इनमें मयानगरों के अतिरिक्त सब मुर्दो को जलाते हैं, मया नगर ही मात्र गाड़ते हैं।[31]

मुस्लिम मोची मात्र जूतियां बनाते हैं। यद्यपि इनका जूता हिन्दू मोचियों से हल्का होता है, किंतु सुंदर अधिक होता है। ये सोलंकी, राठौड़, गुजर एवं खींची राजपूतों से संबंधित है।

मोचियों के अतिरिक्त खटीक जाति की मारवाड़ क्षेत्र की प्रमुख चमार कार्य से जुड़ी जाति है। खटीक मारवाड़ में चमड़े को रंगने का कार्य करते हैं, साथ ही मॉस को बेचने का कार्य भी करते हैं। ये लोग मॉस बेचते हैं,[32] किंतु जानवर को मारने का कार्य किसी ओर से करवाते हैं। किंतु

जब मुस्लिम कसाई माँस बेचने का कार्य करने लगे तो खटीक मात्र चमड़े को रंगने का कार्य करने लगे। खटीक मात्र हिरण, बकरी एवं भेड़ का चमड़ा रंगते हैं। यह पूर्व में राजपूत थे, अतः रीति–रिवाज राजपूतों की भाँति ही है। राजपूतों के संबंध किन जातियों से है, ये भी उन्हीं से संबंध रखते हैं। राजपूत इनके घर का दाना–पानी नहीं करते किंतु शराब साथ बैठकर पीते हैं।[33]

उपरोक्त जातियों के अतिरिक्त मारवाड़ में बलाई (डी क्लास) सरगरा, थोरी, भांबी, कोली, सांसी (ई क्लास) इत्यादि भी किसी न किसी रूप में चर्मकार वर्ग के कार्यों में लगे हुए हैं और आज भी मारवाड़ के विभिन्न क्षेत्रों में यह जातियाँ कार्यरत हैं। इस प्रकार उपरोक्त अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यद्यपि चर्म कार्य करने में मारवाड़ क्षेत्र में विभिन्न जातियां समान रूप से संलग्न थीं, किंतु अपने पूर्व संबंधों एवं धार्मिक मान्यताओं के कारण स्वयं को दूसरी जातियों से उच्च मानती है तथा मारवाड़ के सामाजिक संगठन में इन व्यवस्थाओं को स्वीकृति भी प्राप्त है। इस अध्ययन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि, चमार जाति के आतंरिक स्तरीकरण में प्रारम्भ में जहाँ चमार समूह के लोग मूल और सर्वोच्च थे, किन्तु कार्यविभाजन के कारण धीरे–धीरे उनकी स्थिती सबसे हीन हो गई। अंत में यह कहा जा सकता है कि, इस संदर्भ में जैसे–जैसे चर्म संबंधित कर्म परिष्कृत होते गये, वैसे–वैसे ही उनसे संबंधित समूह के लोगों का सामाजिक–आर्थिक स्तर भी परिष्कृत होता गया।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. X-*31, महाभारत का अनुष्ठान पर्व, क्रिटीकल एडिशन, 48.18 में इसकी जानकारी हैं।*
2. *बोधायन धर्मसूत्र, I, 1.2.31*
3. *वर्ण संकर, अदुतपनन्नन व्रत्यानाहुरमनीशान, I.9.17. 15*
4. *उमा चक्रवती, द सोशल डाइमेन्शस ऑफ अर्ली बुद्धिज्म्, ओ.यू.पी., दिल्ली, 1987, पृष्ठ 122–149*
5. *बोधायन गृहसूत्र, II.5.6*
6. *भारद्वाज गृहसूत्र, I.1*
7. *अत्रि स्मृति, पथ 196; अंगिरस स्मृति, पथ 3; यम स्मृति, पद्य 33*
8. *रामशरण शर्मा, शूद्राज इन एनशियंट इंडिया,तीसरा संस्करण, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली,1990, पृ. 324*
9. *स्कन्दपुराण,नगर खण्ड,VI,242.32*
10. *सी.आई.आई.,III,संख्या 60,II 12.3*
11. *ई.आई., XX, संख्या 14, बी. प्लेट्स,1.19*
12. *ई.आई., III, संख्या 40, एपियफिया कर्नाटिका, VII, शिकारपुरा तालुका 20 ए.*
13. *इस्क्रिप्सन ऑफ बंगाल, III,संपादक, एन.सी. मजूमदार,राजशाही,1929, संख्या 5, दोहा 36*
14. *पी.वी.काणे,हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र,II,77*
15. *टी.वार्टस्, ऑन युआन च्वांग्स् ट्रेवल्स इन इंडिया, सं. टी. रिस डेविड्स और एस.डब्ल्यू. बुशेल, दो खण्डों में, I,168,लंदन,1904–1905*
16. *अलबरुनीज् इंडिया, सं. एडवर्ड सी. सचाऊ, II,134–135, दिल्ली,1965*
17. *स्कन्दपुराण,ब्रह्मखण्ड,II39.291–292*
18. *मुंशी रायबहादुर मुंशीहरदयालसिंह, रिपोर्ट मर्दुमशुमारी राजमारवाड़, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश शोध केन्द्र, मेहरानगढ़ फोर्ट, जोधपुर, 2010, पृ. 1*
19. *वही., पृ. 540*
20. *वही.,*
21. *वही.,*
22. *चदंनमल नवल, रैगर जाति : इतिहास एवं संस्कृति, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2011, पृ.43–45*
23. *वही.*
24. *रिपोर्ट मर्दुमशुमारी राजमारवाड, पृ. 541–542*
25. *वही.*
26. *वही., पृ. 543*
27. *वही.*
28. *वही.*
29. *वही., पृ. 544*
30. *वही., पृ. 545*
31. *वही., पृ. 544*
32. *वही., पृ. 546*
33. *वही. पृ. 548–549*